उपनिषदसार

अथर्व्ववेदीय मुण्डक

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणि पादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

जो वह अद्रेश्य (देखने के योग्य नहीं) है अग्राह्य है अगोत्र अर्थात् अनादि है अवर्ण है न उसके आंख है न कान न उसके हाथ है न पांव नित्य है विभु है सर्व्वगत है सूक्ष्म है अव्यय है धीरों की दृष्टि में वही भूत योनि है ॥

तदेतत्सत्यंयथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाक्षराद्विविधाः सोम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥

सो यह सत्य है जैसे प्रज्वलित पावक से एकही रूप की सहस्रों चिनगारियां निकलती है वैसेही हे सोम्य अक्षर से विविध भाव (जीव) निकलते हैं और फिर उसी में जाते हैं ॥

दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः ।

के अस्त हो जाती हैं वैसे ही विद्वान नाम रूप छोड़ के परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है ॥

अथर्ववेदीय माण्डूक्य

सर्व्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ॥

सब यह ब्रह्म यह आत्मा है ।

नान्तः प्रज्ञं न वहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणम चिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥

न अंतः प्रज्ञ है न बहिः प्रज्ञ है । न दोनों प्रज्ञ है न प्रज्ञानघन है न प्रज्ञ है न अप्रज्ञ है । अदृष्ट है अव्यवहार्य्य है अग्राह्य है अलक्षण है अचिन्त्य है अव्यपदेश्य (कहने को अशक्य) है एकात्म्य प्रत्यय (ज्ञान-प्रतीति) सार है(अर्थात् इसनिश्चयसे मिलता है कि तीनों अवस्था में वही एक आत्मा है) उसमें सारे प्रपंच उपशम को प्राप्त होते हैं शांत है कल्याण रूप है अद्वैत है उसी को चतुर्थ मानते हैं वही आत्मा है वही विज्ञेय है ॥

यजुर्वेदीय तैत्तिरीय

एतत्तदो भवति आकाश शरीरं ब्रह्म।सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दं । शान्तिसमृद्धममृतं ॥

वह तब ब्रह्म हो जाता है आकाश है शरीर जिस्का। सत्यात्म है प्राणों में है आक्रीडा जिस्की मनको आनन्द करे जो शान्ति है समृद्ध जिसकी अमृत है ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्व्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥

सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म को परम आकाश में गुहा के भीतर रहता हुआ जाने सो सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ सारे काम भोगता है ॥

असन्नेव भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुरिति ॥

जो ब्रह्म को असत् जाने आपही असत् हो जाता है। जो ब्रह्म को सत जाने उस को सत जानते हैं ॥

सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत सतपस्तप्त्वा । इदं सर्व्वमसृजत - यदिदंकिञ्च । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य । सच्चत्यच्चाभवत्। निरुक्तञ्चानि-

रुक्तञ्च । निलयनञ्चानिलयनञ्च । विज्ञान-ञ्चाविज्ञानञ्च । सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभ-वत् । यदिदं किञ्च तत्सत्यमित्याचक्षते ॥

उस ने (ब्रह्म ने) कामना की। बहुत हो जाऊं पैदा हूं। वह तप तपा। उसने तप तप के यह सब रचा। जो कुछ कि यह है सब रचके उस ने उसमे प्रवेश किया उस में प्रवेश करके मूर्त्तिमान हुआ और अमूर्त्तिमान भी। निरुक्त (बोला जा सके) भी और अनिरुक्त भी आश्रय भी अनाश्रय भी । विज्ञान भी अविज्ञान भी। सत्य भी असत्य भी सत्य हुआ। जो कुछ यह है वह सत्य यही कहा जाता है ॥

यतो वाचो निवर्त्तन्ते । अप्राप्य मनसासह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कुतश्चने-ति। तᳫं हवावनतपति। किमहᳫंसाधुनाकरवं। किमहं पापमकरवमिति। स य एवं विद्वानेते आत्मान स्पृणुते। उभेह्येवैष एते आत्मानᳫं-स्पृणुते। य एवं वेद ॥

ब्रह्म का जिस्से मन सहित वाचा विना पाये लौटते हैं आनंद जानने वाला किसी से भी भय नहीं खाता उसे यह ताप नहीं होता कि किस लिये मैं ने पुण्य नहीं किया किस लिये मैं ने पाप किया जो ऐसा जानता है

वह दोनों को आत्मा जानता है क्योंकि जो ऐसा जानता है वह दोनों को आत्मा जानता है॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति॥

जिस्से ये सब उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न हो के जिस्से जीते हैं लय होते हुए जिस्में प्रवेश करते हैं उसी के जानने की इच्छाकर वही ब्रह्म है॥

ऋग्वेदीय ऐतरेय

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् सञ्ज्ञानमज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्म्मतिर्म्मनीषाजूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः क्रतुरसुःकामोवश इति। सर्व्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति॥एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्व्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वागावः पुरुषा हस्तिनो यत् किञ्चेदं प्राणिजङ्गमं च पतत्रि च

यच्च स्थावरं। सर्व्वं तत् प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रोलोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म॥

हृदय मन सञ्ज्ञान (चेतन भाव) अज्ञान विज्ञान प्रज्ञान मेधा दृष्टि धृति (धैर्य) मति मनीषा (प्रबल बुद्धि) जूति (गति) स्मृति सङ्कल्प क्रतु (कामना) असु (प्राण) काम वश ये सब प्रज्ञान ही के नाम हैं। यही ब्रह्म है यही इन्द्र है यही प्रजापति है यही सब देवता हैं यही पृथ्वी वायु आकाश जल तेज पञ्चमहाभूत हैं यही हैं वे जो छोटे छोटे मिले हुए हैं। इन के उन के बीज अण्डज जारुज स्वेदज उद्भिज्ज घोड़ा गाय पुरुष हाथी जितने प्राणधारी हैं क्या चलने वाले क्या उड़ने वाले क्या स्थावर। सब प्रज्ञा ही से हुए हैं (अर्थात् प्रज्ञा है नेत्र अर्थात् निर्वाह करने वाला जिस्का) प्रज्ञान में प्रतिष्ठित हैं प्रज्ञान ही से संसार हुआ प्रज्ञान ही प्रतिष्ठा है प्रज्ञान ही ब्रह्म है॥

कृष्णयजुर्व्वेदीय श्वेताश्वतर

न तत्र सूर्यो भाति नचन्द्रतारकं। नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्व्वं। तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति॥

वहां (ब्रह्म में) सूर्य प्रकाश नहीं करता न चांद और

तारे न ये बिजली अग्नि की तो क्या बात है उसी के (ब्रह्म के) प्रकाशमान होने से सब प्रकाशमान होते हैं उसी का प्रकाश सबको प्रकाशमान करता है ॥

वाजसनेय संहिता ।

(ईशावास्य)

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके । तदन्तरस्य सर्व्वस्य तदुसर्व्वस्यास्य बाह्यतः ॥

वह चलता है वह नहीं चलता है वह दूर है और समीप भी । वह इस सब के भीतर है वह इस सब के बाहर है ॥

यस्तु सर्व्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्व्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ यस्मिन् सर्व्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

सब भूतों को केवल आत्मा में देखता है । और आत्मा को सब भूतों में वह किसी से घिन नहीं करता ॥ जब मनुष्य जानता है कि सारे भूत आत्माही हैं (और) एकत्व देखता है तो फिर मोह और शोक कौन हैं (अर्थात् नहीं रहते) ॥

सामवेदीय तलवकार

(केन)

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचोह वाचं स प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः ॥

(ब्रह्म वह है जो) कान का कान है मन का मन है वाचा का वाचा है प्राण का प्राण है आंख की आंख है ॥

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्य देव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्व्वेषां येन स्तद्व्याचचक्षिरे ॥

न वहां (ब्रह्म में) आंख जाती है न वाक जाता है न मन हम (इसलिये उस को) नहीं जानते न(यह)जानते है कि किस तरह उसे वतलावें जो कुछ कि जाना हुआ है उस्से वह अन्य है वह उस्से भी जो कुछ कि नहीं जाना हुआ है परे है ऐसा ही पहलों से जिन्हों ने उसे हम को समझाया सुना है ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं । तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि

पश्यति। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतं। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

जो वाक् से प्रगट नहीं होता और जिस्से वाक् प्रगट होताहै उसी को तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है॥ जो मनसे मनन नहीं करताऔर जिस्से कहते हैं कि मन मनन किया जाता है उसी को तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है॥ जो आंखों से नहीं देखता और जिस्से आंखों को देखते हैं उसी को तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है॥ जो कानोंसे नहीं सुनता और जिस्से यह कान सुना जाता है उसी को तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाता है॥ जो प्राण से प्राण नहीं लेता और जिस्से प्राण प्राण लेता है उसी को तू ब्रह्म जान न यह जो उपासना किया जाताहै॥

यजुर्वेदीय कठ॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजोनित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

जानने वाला न जनमता है न मरता है न वह किसी से हुआ न उस्से कोई हुआ। वह अजहै नित्य है शाश्वत है पुराण है शरीर के मारे जाने से मारा नहींजाता॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳहतश्चेन्मन्यते हतं। उभौ तौ न विजानीतो नायꣳहन्ति न हन्यते॥

"जो मारनेवाला सोचे कि मैं मारता हूं जो मरने वाला सोचे कि मैं मरता हूं तो दोनों नहीं जानते न वह मारता है न वह मारा जाता है॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसन्नित्य मगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तम्महतः परन्ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥

जिस ने अशब्द अस्पर्श अरूप अव्यय अरस नित्य अगन्ध अनादि अनन्त ध्रुव बुद्धि से भी परे (ब्रह्म) को जाना सो मृत्यु के मुख से छूटता है॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषद्-तिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत्॥

हंस (सूर्य) होके आकाश में रहता है वसु (वायु) होके अन्तरिक्ष में रहता है होता होके पृथ्वी में रहता है सोम होके घड़े में रहता है। वह मनुष्य में रहता है वह

देवता में रहता है वह सत्य में रहता है वह आकाशमें रहता है वह पानी में जनमता है (जलजन्तु)वह पृथ्वी में जनमता है (अन्न) वह यज्ञ में जनमता है वह पहाड़ पर जनमता है (नदी) वह सत्य है वह बड़ा है ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्व्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो वहिश्च ॥

जैसे एक अग्नि संसार में आके रूप रूप प्रति रूप रूप की हो जाती है वैसेही एक आत्मा सब प्राणियों के भीतर (और) बाहर भी रूप रूप प्रति रूप रूप का हो रहाहै ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्व्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो वहिश्च ॥

जैसे एक वायु संसार में आके रूप रूप प्रति रूप रूप की हो जाती है वैसेही एक आत्मा सब प्राणियों के भीतर और बाहर भी रूप रूप प्रति रूप रूप का हो रहा है ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपम्बहुधा यः करोति।तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषां ॥

सब प्राणियों के भीतर वही एक आत्मा है वश करने वाला जो एक रूप को बहुत करता है। जो धीर उसे अपने में स्थित देखते हैं वही सदा सुखी हैं दूसरे नहीं॥

अथर्व्ववेदीय प्रश्न॥

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मापुरुषः।स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते॥

यही विज्ञानात्मा पुरुष देखनेवाला है छूने वाला है सुनने वाला है सूंघने वाला है रस लेने वाला है मनन करने वाला है जानने वाला है करने वाला है। वह पर अक्षर आत्मा में सम्प्रतिष्ठित है॥

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र। तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्व्वज्ञः सर्व्वमेवाविवेशेति॥

हे सोम्य जो कोई अक्षर (ब्रह्म) को जो विज्ञानात्मा है और जिस्में सब देवता (इन्द्रिय) प्राण और भूत (पञ्चभूत) प्रतिष्ठित हैं जानता है वह सर्व्वज्ञ है वह सब में प्रवेश करता है॥

सयथेमानद्यः स्यन्दमाना समुद्रायणाः समुद्रं

प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तंगच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते सएषोऽकलो ऽमृतो भवति॥

जैसे ये समुद्र को बहती हुई नदियां समुद्र में पहुंच कर अस्त होजाती हैं उनका नाम और रूप नाश हो जाता है केवल समुद्र पुकारा जाता है ऐसे ही पुरुष (ब्रह्म) को जाती हुई इस परिद्रष्टु (देखने वाले) की सोलहों कला (प्राण १ श्रद्धा २ आकाश ३ वायु ४ अग्नि ५ जल ६ पृथिवी ७ इन्द्रिय ८ मन ९ अन्न १० वीर्य ११ तप १२ मन्त्र १३ कर्म्म १४ लोक १५ नाम १६) पुरुष में पहुंच कर अस्त हो जाती हैं उन का नाम और रूप अस्त हो जाता है केवल पुरुष (ब्रह्म) पुकारा जाता है वह अकला है वह अमृत है॥

छांदोग्य

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांतउपासीत॥

सब यह निश्चय ब्रह्म है क्योंकि उससे पैदा हुआ उसमें लय होता है और उसी से स्थित है शांत होके ऐसी उपासना करे॥

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति तेहोचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति ॥

प्राण ब्रह्म है क ब्रह्म है ख ब्रह्म है उसने कहा प्राण ब्रह्म यह तो मैंने समझा पर क और ख नहीं समझा उन्हों (अग्नियों) ने कहा जो क सोई ख है और जो ख सोई क है ॥

अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां स य एषोणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति ॥

जब मनुष्य मरता है उसका वाक् मन में लय होता है मन प्राण में प्राण तेज में तेज पर देवता में वह यही अणिमा है सो आत्म्य यह सब वह सत्य वह आत्मा है वह तू है हे श्वेतकेतु ॥

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥

वह जिसमें कोई नहीं देख सकता जिस को कोई नहीं सुन सकता और जिस को कोई नहीं जान सकता वह भूमा है वह जिस में दूसरा देख सकता है जिस को दूसरा सुन सकता है और जिस को दूसरा जान सकता है वह अल्प है निश्चय भूमा अमृत है जो अल्प है वह मर्त्य है भूमा कहां रहता है हे भगवन् (नारद ने पूछा) वह अपनी महिमा में रहता है वा यदि पूछो वह महिमा कहां है सनत्कुमार ने (कहा) वह अपनी महिमा में नहीं रहता है॥

आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति॥

निश्चय आत्मा नीचेसे आत्मा ऊपरसे आत्मा पीछेसे आत्मा आगे से आत्मा दक्षिण से आत्मा उत्तर से आत्माही यह सब है॥

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न बधेनास्य हन्यत एतत्सत्य ब्रह्मपुरम्॥

वह कहता है कि इसकी जरा से वह जीर्ण नहीं होता इसके बध करने से वह बध नहीं होता यह ब्रह्मपुर सत्य है॥

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्म्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः॥

मनोमय है प्राण है शरीर उस का भारूप है सत्य-संकल्प है भाकाशात्मा है सर्वकर्म्मा है सर्वकाम है सर्व-गन्ध है सर्वरस है इस सब को ढके है न किसी से कहता है न किसी का भादर करता है ॥

एषम आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा एषम आत्मान्तर्हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवोज्यायानेभ्योलोकेभ्यः ॥

यह आत्मा क्या मेरे हृदय के भितर है व्रीहि से भी छोटा है वा यव से भी वा सरसों से भी वा कंगनी से भी वा उस के तण्डुल से भी यह आत्मा मेरे हृदय के भीतर है पृथिवी से भी बड़ा है अन्तरिक्ष से भी बड़ा है दिव से भी बड़ा है इन सब लोकों से भी बड़ा है ॥

सर्वकर्म्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एषम आत्मान्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतामितः प्रेत्याभिसम्भवितास्मीति ॥

यह सर्वकर्म्मा है सर्वकाम है सर्वगन्ध है सर्वरस है जो इस सब को ढके है न वह बोलता है न आदर करता है यह मेरे हृदय में आत्मा है यह ब्रह्म है मर के मैं उसे पाऊंगा॥

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाऽद्वितीयम्॥

तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत॥१॥ कुतस्तु खलु सोम्यैव आं स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति ॥ सत्वेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥

हे सोम्य यह आगे सत् ही था एक ही अद्वितीय ॥ इसी को कोई कहते हैं यह आगे असत् ही था एक ही अद्वितीय उसी असत् से सत् निकला ॥ १ ॥ उस ने कहा पर हे सोम्य निश्चय ऐसा क्योंकर हो सकता है कि असत् से सत् निकले यह आगे सत् ही था एक ही अद्वितीय ॥ २ ॥

आकाशो वैनाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरातद्ब्रह्मतदमृत आं स आत्मा ॥

निश्चय आकाश नामे है नाम रूप से परे सो ब्रह्म वह अमृत है वह आत्मा है ॥

बृहदारण्यकं

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेत् ॥

यह पहले ब्रह्म था वह आत्माहीं को जानता भया ॥

अहं ब्रह्मास्मीति ॥

मैं ब्रह्म हूं ॥

तस्मात्तत्सर्व्वमभवत् ॥

उस (जानने) से वह (ब्रह्म) सब हुआ ॥

न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारꣳ शृणुयाः नमतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः ॥

न दृष्टि के द्रष्टा को देखता है न श्रुति के श्रोता को सुनता है न मति के मन्ता को मनन करता है न विज्ञान के ज्ञाता को जानता है ॥

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरोयमापो नविदुर्यस्यापःशरीरं योऽपोन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्य्याम्यमृतः।योऽग्नौतिष्ठन्नग्नेरन्तरो यमग्निर्नवेद यस्याग्निःशरीरंयोऽग्निमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्य मृतः। योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तरो यमन्तरिक्षं न वेद यस्यान्तरिक्षꣳशरीरं योऽन्तरिक्षम-

न्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्य्याम्यमृतः॥ योवा-
यौतिष्ठन्वायोरन्तरो यंवायुर्नवेद यस्यवायुः शरी
रं यो वायुमन्तरो यमयत्येषत आत्मान्तर्य्याम्यमृ
तः।यो दिवितिष्ठन्दिवोऽन्तरो यंद्यौर्नवेदयस्यद्यौः
शरीरं यो दिवमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्य्या
म्यमृतः। य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरोयमा-
दित्यो नवेदयस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्त-
रोयमयत्येष त आत्मान्तर्य्याम्यमृतः। यो दिक्षु
तिष्ठन्दिग्भ्योऽन्तरो यंदिशोनविदुर्यस्यदिशाःशा-
रीरं योदिशोऽन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्य-
मृतः। यश्चन्द्रतारके तिष्ठंश्चन्द्रतारकादन्त-
रो यंचन्द्रतारकं न वेदयस्य चन्द्रतारकं शरी
रंयश्चन्द्रतारकमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्त-
र्याम्यमृतः। य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरोय
माकाशो न वेदयस्याकाशः शरीरं य आकाशम
न्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यस्त
मसि तिष्ठंस्तमसोऽन्तरो यंतमो न वेदयस्यत
मः शरीरं यस्तमोऽन्तरोयमयत्येष त आत्मान्त
र्याम्यमृतः।यस्तेजसितिष्ठंस्तेजसोऽन्तरोयं ते
जो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरोयमय

त्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। इत्यधिदैवतमथा-
धिभूतं॥यःसर्व्वेषुभूतेषु तिष्ठन्सर्व्वेभ्यो भूतेभ्योऽ
न्तरोयꣳ सर्व्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्व्वाणि
भूतानि शरीरं यः सर्व्वाणि भूतान्यन्तरोयमय
त्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। इत्यधिभूतमथा
ध्यात्मं॥ यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरो यं प्राणो न
वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्येष
त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽ
न्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाक् शरीरं यो वाचम-
न्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यश्च-
क्षुषि तिष्ठꣳश्चक्षुषोऽन्तरोयं चक्षुर्न वेद यस्य
चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयत्येष त आत्मा
न्तर्याम्यमृतः। यः श्रोत्रे तिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरो यꣳ
श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रꣳ शरीरं यः श्रोत्रमन्तरा
यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यो मनसि
तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः श-
रीरं यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्या-
म्यमृतः। यस्त्वचि तिष्ठꣳस्त्वचोऽन्तरो यं त्वङ्
वेद यस्य त्वक् शरीरं यस्त्वचमन्तरो यमयत्येष
त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यो विज्ञाने तिष्ठन्वि-

ज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानꣳ शरीरं यो विज्ञानमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः। यो रेतसि तिष्ठन्रेतसोऽन्तरो यꣳ रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोऽन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोस्ति श्रोता नान्योऽतोस्ति मन्ता नान्योऽतोस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतो ऽतोऽन्यदार्त्तं ततो होद्दालक आरुणिरुपरराम ॥

जो पृथिवी में रहकर पृथिवी से अन्तर जिस को पृथिवी नहीं जानती जिस का पृथिवी शरीर जो पृथिवी को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो जल में रहकर जल से अन्तर जिस को जल नहीं जानता जिस का जल शरीर जो जल को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो अग्नि में रहकर अग्नि से अन्तर जिस को अग्नि नहीं जानती जिसका अग्नि शरीर जो अग्नि को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो अन्तरिक्ष में रहकर अन्तरिक्ष से अन्तर जिस को अन्तरिक्ष नहीं जानता

जिसका अन्तरिक्ष शरीर जो अन्तरिक्ष को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो वायु में रहकर वायु से अन्तर जिस को वायु नहीं जानता जिस का वायु शरीर जो वायु को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो दिव में रहकर दिव से अन्तर जिस को दिव नहीं जानता जिस का दिव शरीर जो दिव को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो आदित्य में रहकर आदित्य से अन्तर जिस को आदित्य नहीं जानता जिस का आदित्य शरीर जो आदित्य को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो दिशाओं में रहकर दिशाओं से अन्तर जिस को दिशा नहीं जानतीं जिस का दिशा शरीर जो दिशाओं को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो चन्द्र तारों में रह कर चन्द्र तारों से अन्तर जिस को चन्द्र तारे नहीं जानते जिस का चन्द्र तारे शरीर जो चन्द्र तारों को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो आकाश में रहकर आकाश से अन्तर जिस को आकाश नहीं जानता जिस का आकाश शरीर जो आकाश को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो तम में रहकर तम से अन्तर जिस को तम नहीं

जानता जिसका तम शरीर जो तम को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो तेज में रहकर तेज से अन्तर जिसको तेज नहीं जानता जिसका तेज शरीर जो तेज को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इति अधिदैवतमथाधिभूतं। जो सम्पूर्ण भूतों में रहकर सम्पूर्ण भूतों से अन्तर जिस को सम्पूर्ण भूत नहीं जानते जिसका सम्पूर्ण भूत शरीर जो सम्पूर्ण भूतों को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इत्यधिभूतमथाध्यात्मं। जो प्राण में रहकर प्राण से अन्तर जिस को प्राण नहीं जानता जिसका प्राण शरीर जो प्राण को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो वाणी में रहकर वाणी से अन्तर जिसको वाणी नहीं जानती जिसका वाणी शरीर जो वाणी को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो नेत्र में रहकर नेत्र से अन्तर जिस को नेत्र नहीं जानता जिस का नेत्र शरीर जो नेत्र को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो कान में रहकर कान से अन्तर जिस को कान नहीं जानता जिसका कान शरीर जो कान को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो मन में रहकर मन से अन्तर जिस को मन नहीं जानता जिस

का, मन शरीर जो मन को भीतर होके, यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो त्वचा में रहकर त्वचा से अन्तर जिस को त्वचा नहीं जानती जिसका त्वचा शरीर जो त्वचा को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो विज्ञान में रहकर विज्ञान से अन्तर जिसको विज्ञान नहीं जानता जिसका विज्ञान शरीर जो विज्ञान को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। जो रेतस में रहकर रेतस से अन्तर जिसको रेतस नहीं जानता जिस का रेतस शरीर जो रेतस को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। अदृष्ट है द्रष्टा है अश्रुत है श्रोता है अमंत है मन्ता है अविज्ञात है विज्ञाता है इससे अन्य कोई द्रष्टा नहीं इससे अन्य कोई श्रोता नहीं इससे अन्य कोई मन्ता नहीं इससे अन्य कोई विज्ञाता नहीं सो यही आत्मा अन्तर्यामी अमृत है इसके सिवाय नाशी है॥ ७

"कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति। स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति

ति कश्चन एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां याञ्च दिशमन्वेति। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः। यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः। तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यऽदृष्टं द्रष्टृ अश्रुतं श्रोत्रऽमतं मन्त्रऽविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति॥

६।५ (याज्ञवल्क्य ने पूछा) जैसा वनस्पति वृक्ष सच वैसाही पुरुष इस के लोम उस के पत्ते बाहर का चमड़ा वैसाही उसकी भी छाल खचही से पुरुष का रुधिर बहता है छालही से वृक्ष का (रस) गोंद मारे हुए पुरुष से रुधिर टपकता है कटे हुए वृक्ष से रस पुरुष के मांस है वृक्ष के टुकड़े वृक्ष के स्थिर काष्ठ में लगी हुई जैसे छाल वैसेही पुरुष के स्नायु पुरुष के हड्डी वृक्ष के काष्ठ पुरुष और वृक्ष की मज्जाही से उपमा की गयी जो वृक्ष कटा वह जड़ से फिर नवीन उत्पन्न होता है मृत्यु का काटा मरा पुरुष किस जड़ से उत्पन्न होता है रेतस से ऐसा मत कहो वह तो जीते पुरुष के होता है वृक्ष बीज से और साक्षात् (कलम) से भी उत्पन्न होता है जड़ समेत वृक्ष को खोद डालने से फिर उत्पन्न नहीं होता है मृत्यु का काटा मरा पुरुष किस जड़ से उत्पन्न होता है जना हुआ नहीं जना जाता फिर कौन इसे जने धन देने वाले और तिष्ठमान (ब्रह्मवेत्ता) का परायण विज्ञान आनंद ब्रह्म तिस को जान ॥

अत्र पिता ऽपिता भवति माता ऽमाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहा ऽभ्रूणहा चाण्डालो ऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणः तापसोऽतापसो नन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पा-

पेन तीर्णोहि तदा सर्व्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति॥

यहां (सुषुप्ति अवस्था में) पिता अपिता होता है माता अमाता लोक अलोक देवता अदेवता वेद अवेद स्तेन अस्तेन भ्रूणहा अभ्रूणहा चाण्डाल अचाण्डाल पौल्कस अपौल्कस श्रमण अश्रमण तापस अतापस होता है पुण्य और पाप से लिप्त नहीं होता उस अवस्था में हृदय के शोकों से छुट जाता है॥

यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वैतन्न पश्यति। नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वात् नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्। यद्वैतन्न जिघ्रति जिघ्रन्वैतन्न जिघ्रति नहि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत्। यद्वैतन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयते नहि रसयितु रसयतेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत्। यद्वैतन्न वदति वदन्वै तन्न वदति नहि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत्। यद्वैतन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति नहि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो

आकाश किस में ओत और प्रोत है (अर्थात् किस ताने बाने से बिना है)। याज्ञवल्क्य बोले हे गार्गि ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) लोग उस को अक्षर कहते हैं वह न स्थूल है न अणु है न ह्रस्व है न दीर्घ है न लोहित है न उसमें तेल है न छाया है न तम है न वायु है न आकाश है असंग है अरस है अगन्ध है अचक्षु है अश्रोत्र है अवाक् है अमन है अतेजस्क है अप्राण है अमुख है न कोई इन्द्रिय है न भीतर है न बाहर है न वह कुछ खाता है न उसे कोई खाता है। इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि सूर्य और चन्द्रमा धरेहुए स्थित हैं इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि स्वर्ग और पृथिवी धरी हुई स्थित हैं इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि निमेष मुहूर्त दिन रात्रि पक्ष मास ऋतु वर्ष ये सब धरे हुए स्थित हैं इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि पूर्व में पश्चिम में और भी दिशाओं में श्वेतपर्वतों से नदियां बहती हैं इस अक्षर के प्रशासन से हे गार्गि देने वाले मनुष्य प्रशंसा पाते हैं यजमान के देवता दर्वी (होम) के पितर इसी के प्रशासन से वशवर्ती हैं। इस अक्षर के बिना जाने हे गार्गि जो इस संसार में होम करता है यज्ञ करता है बहुत सहस्रों वर्ष तप करता है उसका (फल) नाश युक्त ही होता है इस अक्षर के बिना जाने हे गार्गि जो इस संसार से जाता है सो कृपण है इस अक्षर को जान के हे गार्गि जो इस संसारसे जा-

ताहै सो ब्राह्मण है।यह अक्षर है गार्गि अदृष्ट है द्रष्टा है अश्रुत है श्रोता है अमत है मन्ता है अविज्ञात है विज्ञाता है इसके सिवाय कोई द्रष्टा नहीं इसके सिवाय कोई श्रोता नहीं इसके सिवाय कोई मन्ता नहीं इस के सिवाय कोई विज्ञाता नहीं इसी अक्षर में है गार्गि आकाश ओत और प्रोत है ॥

(तान् हैतैः श्लोकैः पप्रच्छ) यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषो ऽमृषा। तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिकाबहिः ॥ त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः। तस्मात्तदातृणात्प्रैति रसो वृक्षादिवाहतात् ॥ मांसान्यस्य शकराणि किनाटं स्नावतत्स्थिरं। अस्थीन्यन्तरतोदारूणि मज्जा मज्जोपमा कृता॥ यद्वृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः।मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति॥ रेतस इति मावोचत जीवतस्तत्प्रजायते। धानारुह इव वै वृक्षोऽञ्जसा प्रेत्य सम्भवः ॥ यत्समूलमावृहेयुर्वृक्षं न पुनराभवेत्। मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ॥ जात एव न जायते कोऽन्वेनं जनयेत्पुनः। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं। तिष्ठमानस्य तद्विद इति ॥

ऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात्। यद्वैतन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते नहि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत। यद्वैतन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति नहि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततो ऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत्। यद्वैतन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति नहि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात्॥ यत्र वाऽन्यदिवस्यात्तत्रान्यो ऽन्यत्पश्येदन्यो ऽन्यज्जिघ्रेदन्यो ऽन्यद्रसयेदन्यो ऽन्यद्वदेदन्यो ऽन्यच्छृणुयादन्यो ऽन्यन्मन्वीतान्यो ऽन्यत्स्पृशेदन्यो ऽन्यद्विजानीयात्॥ सलिल एको द्रष्टा ऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषास्य परमागतिरेषास्य परमा सम्पदेषोऽस्य परमोलोक एषो ऽस्य परमआनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति॥

¹ (सुषुप्ति अवस्था में) जो द्वैत (दूसरे) को नहीं देखता द्रष्टा की दृष्टि का लोप नहीं होता क्योंकि अवि-

नाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको देखे। जो दूसरे को नहीं सूंघता घ्राता के घ्राण का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको सूंघे। जो दूसरे को स्वाद नहीं लेता स्वाद लेने वाले के स्वाद का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको स्वाद ले। जो दूसरे को नहीं कहता कहने वाले के कहने का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको कहे। जो दूसरे को नहीं सुनता श्रोता के श्रवण का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको सुने। जो दूसरे को नहीं मनन करता मन्ता के मनन का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको मनन करे। जो दूसरे को नहीं स्पर्श करता स्पर्श करने वाले के स्पर्श का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको स्पर्श करे। जो दूसरे को नहीं जानता ज्ञाता के ज्ञान का लोप नहीं होता क्योंकि अविनाशी है वह द्वितीय नहीं है उससे दूसरा पृथक भूत नहीं है जिसको जाने। जहा अन्य इव (सा) होय वहा अन्य अन्य को देखे अन्य अन्य

को सूंघे अन्य अन्य को स्वाद ले अन्य अन्य को कहे अन्य अन्य को सुने अन्य अन्य को मनन करे अन्य अन्य को स्पर्श करे अन्य अन्य को जाने। सलिल (जैसा) एक द्रष्टा अद्वैत होता है याज्ञवल्क्य ने कहा हे सम्राड् यही ब्रह्मलोक है यही इसकी परम गति है यही इसकी परम सम्पत है यही इसका परम लोक है यही इसका परम आनन्द है इसी आनन्द का कला-मात्र अन्य भूत उपजीवन करते हैं॥

स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः पराङ्पर्य्यावर्त्तते तथारूपज्ञो भवति। एकी भवति न पश्यतीत्याहुरेकी भवति न जिघ्रतीत्याहुरेकी भवति न रसयतइत्याहुरेकी भवति न वदतीत्याहुरेकी भवति न शृणोतीत्याहुरेकी भवति न मनुत इत्याहुरेकी भवति न स्पृशतीत्याहुरेकी भवति न विजानातीत्याहुस्तस्य हे तस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योततेनैष आत्मा निष्क्रामति॥

वह चाक्षुष पुरुष जब पराङ् (बाहर को) पर्य्यावर्त्तन करता है तब रूपज्ञ होता है जब एक होता है नहीं देखता है जब एक होता है नहीं स्वाद लेता है जब एक होता है नहीं कहता है जब एक होता है नहीं सुनता है जब एक होता है नहीं मनन करता है जब एक होता

है नहीं स्पर्श करता है जब एक होता है नहीं जानता है ऐसा कहते हैं उसके हृदय का भग्र उस एकी भाव से प्रद्योतन करता है उस प्रद्योतन से यह आत्मा निकल जाता है ॥

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्म्ममयोऽधर्म्ममयः सर्व्वमयस्तद्यदेतदिदम्मयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्म्मणा भवति पापः पापेन ॥

वह या यह आत्मा ब्रह्म विज्ञानमय मनोमय प्राणमय चक्षुमय श्रोत्रमय पृथिवीमय जलमय वायुमय आकाशमय तेजमय अतेजमय काममय अकाममय क्रोधमय अक्रोधमय धर्म्ममय अधर्म्ममय सर्व्वमय प्रत्यक्षमय अप्रत्यक्षमय जो जिसके करने का और आचरण का शील है उसमें वैसाही हो जाता है पुण्य करने से पुण्यात्मा पाप करने से पापी होता है पुण्य कर्म से पुण्य पाप से पाप होता है ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदिश्रिताः।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति॥

जब इसके हृदय से सब काम (इच्छा) छुट जाते हैं यह मनुष्य यहांही अमृत होकर ब्रह्म को पाजाताहै॥

तद्यथाहि निर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैव मेवेद ९ शरीर ९ शेते अथायमशरीरो ऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव॥

जैसे सांप की केचली जुदा होके बांबी में मरी पड़ी सोती है वैसेही यह शरीर सोता है यह अशरीर अमृत प्राण ब्रह्महीं है तेजही है॥

अथह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्य्ये बभूवतुर्मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्री प्रज्ञैव तर्हि कात्यायन्यथह याज्ञवल्क्यो ऽन्यद्वृत्तमुपाकरिष्यन्॥मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्राजिष्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्ततेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति। सा होवाच मैत्रेयी यन्नुम इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात्स्यान्वहं तेनामृताऽऽहोनेतिनेतिहोवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवित९ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति। सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृतास्यां

किमहं तेन कुर्य्यां यदेव भगवान्वेत्थ तदेव मे विब्रूहीति। स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया वै खलुनो भवती सती प्रियमवृधद्धन्ततर्हि भवत्येत द्व्याख्यास्यामितेव्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति। स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति न वा अरे पुत्राणां कामायपुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्रा· प्रिया भवन्ति न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियम्भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति न वा अरे ब्रह्मण· कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति न वा अरे लोकानां कामाय लोका प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय

देवाः प्रिया भवन्ति न वा अरे वेदानां कामाय वेदाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदꣳसर्वं विदितं। ब्रह्मतं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं परा दुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्व्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्व्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि सर्व्वाणि भूतानीदꣳ सर्व्वं यदयमात्मा। स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः। स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छ

कनुयाद् ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्म-
स्य वा शब्दो गृहीतः। स यथा वीणायै वाद्यमा-
नायै न वाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय वीणा-
यैतु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः।
स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्च-
रन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसित-
मेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इ
तिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्रा
एयनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳहुतमाशि-
तं पायितमयञ्च लोकः परश्च लोकः सर्व्वाणि
च भूतान्यस्यैवैतानि सर्व्वाणि निश्वसितानि।
स यथा सर्व्वा सामपाꣳसमुद्र एकायनमेवꣳसर्वे
पाꣳस्पर्शानां त्वगेकायनमेवꣳ सर्व्वेपाꣳ रसा-
नां जिह्वैकायनमेवꣳसर्वेषां गन्धानां नासिके का
यनमेवꣳ सर्व्वेपाꣳ रूपाणां चक्षुरेकायनमेवꣳ
सर्व्वेपाꣳ शब्दानाꣳ श्रोत्रमेकायनमेवꣳ सर्व्वे-
पाꣳ सङ्कल्पानां मन एकायनमेवꣳ सर्व्वासां
विद्यानाꣳ हृदयमेकायनमेवꣳ सर्व्वेषां कर्म्म-
णाꣳ हस्तावेकायनमेवꣳ सर्व्वेपामानन्दानामु-
पस्थ एकायनमेव ꣳ सर्व्वेषां विसर्गाणां पायु-

रेकायनमेव५ सर्व्वेषामध्वनां पादावेकायनमेव५ सर्व्वेषां वेदाना५ वागेकायनं। स यथा सैन्धवघनो ऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नोरसघन एवैवं वा अरे ऽयमात्मा ऽनन्तरो ऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य सञ्ज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः। सा होवाच मैत्रेय्यत्रैवमाभगवान्मोहान्तमापीपिपन्न वा अहमिमं विजानामीति स होवाच न वा अरे ऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरे ऽयमात्मा ऽनुच्छित्तिधर्म्मा। यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतर५ रसयते तदितर इतरमभिवदति तदितर इतर५ शृणोति तदितर इतरं मनुते तदितर इतर५ स्पृशति तदितर इतरं विजानाति यत्रत्वस्य सर्व्वमात्मैवाभूत्तत्केन कमभिवदेत्तत्केनक५ शृणुयात्तत्केन कं मन्वीत तत्केन क५ स्पृशेत्तत्केन कं विजानीयाद्येनेद५ सर्व्वं विजानाति तं केन विजानीयात्सएष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यते ऽशीर्य्यो नहि शीर्य्यते ऽसङ्गो नहि सज्यते ऽसितो न

ऽयथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजानी-
यादित्युक्ता नुशासनासि मैत्रेय्येतावदरेखल्वमृ-
तत्वमितिहो क्ता याज्ञवल्क्यो विजहार ॥

याज्ञवल्क्य के दो स्त्री थीं मैत्रेयी और कात्यायनी मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी कात्यायनी स्त्रियों कीसी बुद्धि रखती थी याज्ञवल्क्य (गृहस्थाश्रम से) दूसरे आश्रम (परिव्राजक) में चलने कोहुए बोले हे मैत्रेयी मैं इस जगह से परिव्रजन करूंगा तू चाहे तो तेरा कात्यायनी से विभाग कर दूं वह मैत्रेयी बोली हे स्वामी यह पृथ्वी धनसे पूर्ण होगी तो मैं क्या अमृता हो जाऊंगी याज्ञवल्क्य बोले कि नहीं जैसा धनियों का जीवन होता है वैसाही तेरा भी होगा धन से अमृतत्व की आशा नहीं है। मैत्रेयी बोली जिससे मैं अमृता न हूंगी उसे मैं क्या करूंगी स्वामी जो आप जानते हैं सोही मुझको कहिये वह याज्ञवल्क्य बोले निश्चय कर हमको प्रिय होती हुई तू अब प्रीति को बढ़ाती है तेरेलिये कहता हूं मेरे कहनेमें मन लगा। वह बोले अरी पति के कामके लिये पति प्रिय नहीं होता अपने काम के लिये पति प्रिय होता है अरी स्त्री के काम के लिये स्त्री प्रिय नहीहोती अपने काम के लिये स्त्री प्रिय होती है अरी पुत्रों के काम के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये पुत्र प्रिय होते हैं अरी धन के काम के लिये धन प्रिय

नहीं होता अपने काम के लिये धन प्रिय होता है अरी पशुओं के काम के लिये पशु प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये प्रिय होते हैं अरी ब्रह्म के काम के लिये ब्रह्म प्रिय नहीं होता अपने काम के लिये प्रिय होता है अरी क्षत्र के काम के लिये क्षत्र प्रिय नहीं होता अपने काम के लिये प्रिय होता है अरी लोकों के काम के लिये लोक प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये प्रिय होते हैं अरी देवताओं के काम के लिये देवता प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये प्रिय होते हैं अरी वेदों के काम के लिये वेद प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये प्रिय होते हैं अरी (पञ्चमहा) भूतों के काम के लिये (पञ्चमहा) भूत प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये प्रिय होते हैं अरी सब के काम के लिये सब प्रिय नहीं होते अपने काम के लिये प्रिय होते हैं अरी आत्मा द्रष्टव्य श्रोतव्य मन्तव्य निदिध्यासितव्य है अरी मैत्रेयी निश्चय करके आत्मा के देखने सुनने मानने और अच्छी तरह जानने से यह सब जाना जाता है । ब्रह्मजाति उस्को तिरस्कार कर देती है जो आत्मा से दूसरे में ब्रह्म जानता है क्षत्र जाति उस्को तिरस्कार कर देती है जो आत्मा से दूसरे में क्षत्र जानता है लोक उस्को तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में लोक जानता है देवता उस्को तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में देवता जानता है वेद उस्को

तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में वेद जानता है (पञ्चमहा) भूत उसको तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में (पञ्चमहा) भूत जानता है सब उसको तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में सब जानता है यह ब्रह्म यह क्षत्र ये लोक ये देवता ये वेद ये सब (पञ्चमहा) भूत यह सब यही आत्मा है। वह जैसे बजायी जाती दुंदुभी के बाहर के शब्दको ग्रहण न कर सकिये पर दुंदुभी के ग्रहण करने से बजायी जाती दुंदुभी का शब्द गृहीत हो जाता है। वह जैसे बजाये जाते शंख के बाहर के शब्द को ग्रहण न कर सकिये पर शंख के ग्रहण करने से बजाये जाते शंख का शब्द गृहीत हो जाता है। वह जैसे बजायी जाती बीन के बाहर के शब्द को ग्रहण न कर सकिये पर बीन के ग्रहण करने से बजायी जाती बीन का शब्द गृहीत हो जाता है। वह जैसे गीली लकड़ी के संयोग से अग्नि में से धूमां निकलता है वैसेही अरी इस बड़े भूत का निश्वसित है यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वणवेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोक सूत्र अनुव्याख्या व्याख्या इष्ट (यज्ञ) हुत (होम) खाया हुवा पिया हुवा यह लोक पर लोक सब भूत इसीका यह सब निश्वसित है। वह जैसे सब जलों का समुद्र एकायन (अयन-ठिकाना) है सब स्पर्शों का त्वचा एकायन है सब रसों का जिह्वा एकायन है सब गन्धोंका

तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में वेद जानता है (पञ्चमहा) भूत उसको तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में (पञ्चमहा) भूत जानता है सब उसको तिरस्कार कर देते हैं जो आत्मा से दूसरे में सब जानता है यह ब्रह्म यह क्षत्र ये लोक ये देवता ये वेद ये सब (पञ्चमहा) भूत यह सब यही आत्मा है। वह जैसे बजायी जाती दुंदुभी के बाहर के शब्दको ग्रहण न कर सकिये पर दुंदुभी के ग्रहण करने से बजायी जाती दुंदुभी का शब्द गृहीत हो जाता है। वह जैसे बजाये जाते शंख के बाहर के शब्द को ग्रहण न कर सकिये पर शंख के ग्रहण करने से बजाये जाते शंख का शब्द गृहीत हो जाता है। वह जैसे बजायी जाती बीन के बाहर के शब्द को ग्रहण न कर सकिये पर बीन के ग्रहण करने से बजायी जाती बीन का शब्द गृहीत हो जाता है। वह जैसे गीली लकड़ी के संयोग से अग्नि में से धूआं निकलता है वैसेही अरी इस बड़े भूत का निश्वसित है यह ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वणवेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोक सूत्र अनुव्याख्या व्याख्या इष्ट (यज्ञ) हुत (होम) खाया हुआ पीया हुवा यह लोक पर लोक सब भूत इसीका यह सब निश्वसित है। वह जैसे सब जलों का समुद्र एकायन (अयन-ठिकाना) है सब स्पर्शों का त्वचा एकायन है सब रसों का जिह्वा एकायन है सब गन्धोंका

नासिका एकायन है सब रूपों का चक्षु एकायन है सब शब्दों का कान एकायन है सब सङ्कल्पों का मन एकायन है सब विद्याओं का हृदय एकायन है सब कामों का हाथ एकायन है सब आनन्दों का उपस्थ एकायन है सब विसर्गों का पायु एकायन है सब पथों का पैर एकायन है सब वेदों का वाक् एकायन है। वह जैसे सैन्धव घन भीतर और बाहर संपूर्ण रस का समूह है अरी ऐसेही यह आत्मा भीतर और बाहर प्रज्ञान घनही है इन भूतों से उठ कर उन्हीं के पीछे होकर नाश को प्राप्त होता है नाश होने पर संज्ञा नहीं रहती अरी मैं कहता हूं यह याज्ञवल्क्य ने कहा। वह मैत्रेयी बोली हे भगवान यहां आपने मुझको मोह के मध्य में गिरा दिया मेरी समझ में यह नहीं आता वह बोले अरी मैं मोहकी बात नहीं कहता हूं अरी यह आत्मा अविनाशी है और अनुच्छित्ति धर्म्मा है (जिसका कभी उच्छेद नहीं) जहां द्वैत सा होता है वहां एक दूसरे को देखता है वहां एक दूसरे को सूंघता है वहां एक दूसरे का रस लेता है वहां एक दूसरे का अभिवादन करता है वहां एक दूसरे की सुनता है वहां एक दूसरे का मनन करता है वहां एक दूसरे को छूता है वहां एक दूसरे को जानता है जहां इस का सम्पूर्ण आत्माही होगया तब किससे किसको देखेगा तब किससे किसको सूंघेगा तब किससे किस का रस लेगा तब किससे किसका अभिवादन करेगा तब

किससे किसको सुनेगा तब किससे किसका मनन करेगा तब किससे किसे छूएगा तब किससे किसे जानेगा जिस से यह सम्पूर्ण जाना जाता है उसको किससे जानिये वह आत्मा यह नहीं यह नहीं अगृह्य है ग्रहण नहीं होता अशीर्य है शीर्य नहीं होता (नहीं टूटता) असङ्ग है साथ नहीं किया जाता असित (अबद्ध) है दुखी नहीं होता नष्ट नहीं होता अरी विज्ञाता को किससे जानिये यह तुझे सब शिक्षा देदी अरी मैत्रेयी इतनाही अमृतत्व है यह कहके याज्ञवल्क्य परिव्राजता को धारण करतेभये॥

कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत्॥

ऋतुरम्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः सम्भूतो भार्यैरेत संवत्सरस्य तेजो भूतस्य भूतस्यात्मा भूतस्य भूतस्य त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मि तमाहकोऽहमस्मीति सत्यमिति ब्रूयात् किं तद्यत्सत्यमिति यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ यद्देवाश्च प्राणाश्च तत्त्यं तदेतया वाचाभिव्याह्रियते सत्यमित्येतावादिदं सर्वमिदंसर्वमसीत्येवैनं तदाह॥

मैं ऋतु हूं मैं वह हूं जो ऋतु में है मैं आकाश योनि से हुआ हूं स्वयं प्रकाश ब्रह्म संवत्सर का वीर्य च-

तुर्विध प्राणियों का तेज प्राणी और अप्राणियों का और पंच भूतों का आत्मा तू आत्मा है जो तू है सो ही मैं हूं उस से कहता है मैं कौन हूं तू सत्य है ऐसा कहे वह सत्य क्या है इन्द्रियों से और प्राणों से जो अन्यत् सो सत् है इन्द्रियां और प्राण त्य अर्थात् वह है इस वाणी से सत्य कहा जाता है जो कुछ कि यह सब है यह सब तू है ऐसा वह उस को कहता है ॥

मैत्री उपनिषत् ॥

भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमज्जमांस शुक्रशोणित श्लेष्माश्रुदूषिका विण्मूत्र पित्त कफसंघातेदुर्गन्धे निःसारेऽस्मिञ्छरीरे किंकामोप भोगैः ॥

हे भगवान इस अस्थि चर्म स्नायु मज्जा मांस शुक्र शोणित श्लेष्मा अश्रुदूषिका (आंख का मैल) विट मूत्र पित्त कफ के संघात दुर्गन्धि निःसार शरीर में मुझे भोगों की क्या चाह हो ॥

अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्रहि श्रृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैव स्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्यकारण कर्म निर्मुक्तं निर्वचन मनौपम्यं निरुपाख्यं किं तदवाच्यं ॥

जहां विज्ञान द्वैती होता है वहां वह सुनता है देखता है सूंघता है रस लेता है छूता भी है आत्मा सब जानता है जहां विज्ञान अद्वैती होता है वहां कार्य कारण कर्म से निर्मुक्त है निर्वचन है अनौपम्य है निरुपाख्य है वह क्या है अवाच्य है ॥

वन्हेश्च यद्वत् खलु विस्फुलिङ्गाः सूर्यान्मयूखाश्च तथैव तस्य। प्राणादयो वैपुनरेवतस्मादभ्युच्चरन्तीह यथाक्रमेण ॥

अग्नि की जैसे चिनगारियां और सूर्य की जैसे किरणें वैसेही प्राणादि यथाक्रम फेर फेर उससे निकलते हैं॥

ब्रह्मणो वावैतत्तेजःपरस्यामृतस्याशरीरस्य यच्छरीरस्यौष्ण्यमस्यैतत् घृतम् ॥

शरीर का औष्ण्य अमृत अशरीर परब्रह्म का तेज है यह उस का घी है ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमाङ्गतिं ॥

जब पांचों ज्ञानेन्द्रिय मन के साथ रहें और बुद्धि चेष्टा न करे उसी को परम गति कहते हैं ॥

यथा निरिन्धनो वन्हिः स्वयोना उपशाम्यते। तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोना उपशाम्यते ॥ स्व-

जैसे निरिन्धन वह्नि अपनी योनि में उपशम को प्राप्त होती है। वैसे ही वृत्ति के क्षय से चित्त अपनी योनि में उपशम पाता है॥ इन्द्रियार्थ से मूढ़ हुवे मन की कर्म वश अनुगामी भूठी प्रवृत्तियां सत्य काम से अपनी योनि में उपशम पाने पर नहीं रहतीं। चित्त ही संसार है यत्न कर के उसे शोधे। जो चिन्तन करता है उसी में तन्मय हो जाता है यही सनातन गुह्य है॥ चित्त ही के प्रसाद से शुभा शुभ कर्मों को नाश करता है। प्रसन्नात्मा आत्मा में स्थिर हो के अव्यय सुखको प्राप्त होता है॥ जन्तुवों का चित्त जैसा विषयों के ग्रहण में समासक्त होता है। यदि ऐसा ब्रह्म में होवे कौन बंधन से न छूटे॥ मन दो प्रकार का कहा है शुद्ध और अशुद्ध। अशुद्ध काम सम्पर्क से और शुद्ध काम विवर्जित॥ लय और विक्षेप से रहित मन को निश्चल करके। जब अमनी भाव होताहै तब उस परमपदको प्राप्त होता है॥ जब तक हृदय में क्षय न हो जाय तब तक मन का निरोध करना चाहिये। यही ज्ञानहै यही मोक्षहै शेष केवल ग्रंथ विस्तार है॥ चित्तको जिसका मल समाधि से धो गया है और आत्मा में निवेशित हो गया है जो सुख होता है वाणी उस का वर्णन नहीं कर सकती उसको। वह आप ही अन्तःकरण से ग्रहण किया जाता है॥ जैसे पानी में पानी अग्नि में अग्नि आकाश में आकाश न देख सकिये। ऐसे ही जिस का मन अन्त-

गेत वह छूटता है॥ मनुष्यों का मन ही बन्ध और मोक्ष का कारण है। विषय के संग बन्ध और निर्विषय मोक्ष सुना है॥

इति

मुंशी नवलकिशोर (सी.आई.ई.) केछापेखानेमें छपा

जनवरीसन् १८९२ ई० ॥